(देश देशान्तरों में प्रचारित, सबसे सस्ता, उच्च कोटि का आध्यात्मिक--पत्र)

सन्देश नहीं मैं स्वर्ग लोक का लाई।
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आई॥

वार्षिक मूल्य १॥) सम्पादक--श्रीराम शर्मा। एक अङ्क =)

वर्ष ५ मथुरा १ अप्रैल सन् १९४४ ई० अङ्क ४

अपने वास्तविक स्वरूप को पहिचानिए।

ऐ अविनाशी आत्माओ ! तुम तुच्छ नहीं महान हो। तुम्हें किसी आशक्तता का अनुभव करना या कुछ मांगना नहीं है। तुम अनन्त शक्तिशाली हो, तुम्हारे बल का पारावार नहीं, जिन साधनों को लेकर तुम अवतीर्ण हुए हो वे अचूक ब्रह्मास्त्र हैं। इनकी शक्ति अनेक इन्द्र-वज्रों से अधिक है। सफलता और आनन्द तुम्हारे जन्मजात अधिकार हैं। उठो, अपने को, अपने हथियारों को, भली प्रकार पहचानो और बुद्धि पूर्वक कर्तव्य मार्ग में जुट जाओ। फिर देखें कैसे वह चीज नहीं मिलती जिन्हें तुम चाहते हो। तुम कल्पवृक्ष हो, पारस हो, अमृत हो और सफलता की साक्षात मूर्ति हो।

तुम शरीर नहीं हो, जीव नहीं हो वरन् आत्मा--महान् आत्मा--परम् आत्मा--हो। तुम इन्द्रियों के गुलाम नहीं हो, आदतें तुम्हें मजबूर नहीं कर सकतीं। पाप और अज्ञान में इतनी शक्ति नहीं है कि वे तुम्हारे ऊपर शासन कर सकें। अपने को हीन, नीच, पतित, पराधीन और दीन हीन मानना एक प्रकार की आत्म हत्या है। आध्यात्म शास्त्र का सन्देश है कि ऐ--महान पिता के महान पुत्रो ! अपनी महानता को पहिचानो। उसे समझने में, खोजने में और प्राप्त करने में तत्परता पूर्वक जुट जाओ। तुम संत् हो, [illegible] हो, आनंद अपनी वास्तविकता को अनुभव करो, और स्वाधीनता का--मोक्ष का--आनन्द [illegible]

मनुष्य को 'सच्चा मनुष्य' बनाने का प्रयत्न

दुःखी जीवन को सुखमय बनाने की एक अद्भुत योजना

भगवान् कृष्ण की लीला भूमि मथुरापुरीमें कर्मयोग शिक्षा की व्यवहारिक व्यवस्था।

क्या आप यह इच्छाऐं करते हैं ?

(१) क्या आप बुद्धिमान और सद्गुणी बनना चाहते हैं ?
(२) क्या आप अपनी चिन्ता और वेदनाओं से छुटकारा पाना चाहते हैं ?
(३) क्या आप संसार में प्रतिष्ठा और आदर पूर्ण उन्नत जीवन जीना चाहते हैं।
(४) क्या आप अपने परिवार को अपना वश-वर्ती बनाना चाहते हैं ?
(५) क्या आप इस जीवन में ही स्वर्ग का आनन्द प्राप्त करना चाहते हैं ?
(६) क्या आप शत्रुओं के अनिष्ट प्रभाव से बचना चाहते हैं ?
(७) क्या आप कुविचार, कुसंस्कार और बुरी आदतों से छुटकारा पाना चाहते हैं ?
(८) क्या आप अपने कारोबार में अधिक लाभ प्राप्त करना चाहते हैं ?
(९) क्या आप अपनी तन्दुरुस्ती और सुन्दरता बढ़ाना चाहते हैं ?
(१०) क्या आप अपने दुखदायी मानसिक रोगों को मार भगाना चाहते हैं ?
(११) क्या आप अपनी बुद्धि तथा प्रतिभा का विकाश करना चाहते हैं।
(१२) क्या आप मृत्यु के उपरान्त सद्गति की इच्छा करते हैं ?
(१३) क्या आप सच्चे धर्मात्मा, योगी और ईश्वर भक्त बनना चाहते हैं ?
(१४) क्या आप दूसरों की कृपा, सद्भावना स्नेह और सहायता चाहते हैं ?
(१५) क्या आप दुनियां दारी की विकट उलझनों को आसानी से पार करना चाहते हैं ?
(१६) क्या आप मनुष्यता प्राप्त करके सच्चे अर्थों में मनुष्य-द्विज—बनना चाहते हैं ?

यदि उपरोक्त इच्छाओं को पूर्ण करना चाहते हैं तो 'अखंड ज्योति' आपकी कुछ व्यावहारिक सहायता कर सकती है। 'कर्मयोग' की शिक्षा प्राप्त करने के लिए आप मथुरा आ सकते हैं।

श्री मद्भगवद्गीता द्वारा शिक्षा। शिक्षाक्रम बिलकुल सादा। आचार्य श्रीराम शर्मा के साथ पारिवारिक सदस्य की तरह रहना। शिक्षा की कोई फीस नहीं। भोजन खर्च की १५) मासिक से कम में ही चल जाना। व्रज के प्रमुख तीर्थों की यात्रा। रहनेके समय की कोई कैद नहीं। तपस्वी जीवन बिताने व अनुशासन में रहना होगा। बिस्तर और थाली लौटा साथ लाना चाहिए। एक समय में अधिक से अधिक ५-७ व्यक्ति रखने की ही व्यवस्था यहां है। आने से पूर्व अपना शारीरिक और मानसिक पूरा परिचय भेजकर स्वीकृति प्राप्त कर लेनी चाहिए। बिना स्वीकृति के कोई सज्जन न पधारें।

मैनेजर—अखण्ड-ज्योति, मथुरा।

घीया मंडी रोड, किशोरी रमन गर्ल्स स्कूल के सामने

श्री कैलाशपति बैंक अनलिमिटेड ।

शाखाऐं—ऋषिकेष (हिमालय). नैरोबी (अफरीका) मेहसाणा (गुजरात)

सोल प्रोप्राइटर :—भगवान कैलाशपति. मैनेजिङ्ग डाइरेक्टर :–श्री जी० एम० शर्मा.

हिमालय शाखा के प्रेसीडेण्ट :—श्री स्वामीशिवानन्द जी, आनन्द कुटीर ऋषिकेश (हिमालय)

मेहसाणा ब्राञ्च के मैनेजर:—श्री रामलाल भाई गोपाल जी व्यास
बी. ए. एल. एल. बी. वकील

इस बैंक में लाल स्याही से कागज की एक और निश्चित संख्या में "ॐ नमः शिवाय" मन्त्र (नागरी अक्षरों में) एक ही मनुष्य के हाथ लिखे हुए जमा करने से निम्न लिखित वस्तुएँ उपहार में दी जायँगी।

इस के अतिरिक्त निम्न लिखित मन्त्र भी बैंक में जमा किये जा सकते हैं. (१) गणपतये नमः (२) ॐ नमोभगवते वासुदेवायः (३) ॐ नमोनारायणायः (४) ॐ हुं हनुमतयेनमः (५) हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे, हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे (नीचे बतलाई हुई संख्या में इस मन्त्र की संख्या आधी गिनी जायगी).

मन्त्र की संख्या.	इनाम में मिलने वाली वस्तुऐं.			
५००,	श्री काशीजी में तैयार कराया हुआ शुद्ध जनेऊ (यज्ञोपवीत)		....	२
२०००,	चंदन या तुलसी की सुन्दर माला	....	....	१
५०००,	असली पञ्चमुखी रुद्राक्ष की माला	...	....	१
"	सुन्दर धार्मिक फोटो साइज़ १२ × १५	...	...	१
"	श्री भगवद्गीता–गुजराती टीका वाली	....	...	१
१००००,	पञ्चपात्र तांबे का	....	....	१
"	सुन्दर नर्मदेश्वर शिव लिङ्ग	....	....	१

सवा लाख, "कल्प वृक्ष" मासिक पत्र उज्जैन, एक वर्ष को विना मूल्य
डेढ़ लाख, "अखण्ड ज्योति" मासिक पत्र मथुरा, एक वर्ष को बिना मूल्य
दो लाख, "कल्याण" मासिक पत्र गोरखपुर, " " " " "
" स्फटिक मणि की सुन्दर माला अथवा शिव लिङ्ग ... १
तीन लाख, गुजराती टीका वाली रामायण अथवा श्रीमद्‌भागवत् १
पांच लाख, शिव पुराण गुजराती टीका वाला १
पन्द्रह लाख, काशी व हरद्वार की टिकिट मेहसाणा स्टेशन से और साथ में ५) भोजन के वास्ते.
चौबीसलाख, बद्रीकेदारनाथजी की यात्रा का खर्चा.

(१) यह इनाम बैंक की तरफ से वर्ष में तीन वार "महाशिवरात्रि" "अक्षय तृतीया" और विजयादशमी–(दशहरा) वितरण किये जायेंगे.

(२) मन्त्र लिखने के इच्छुक महानुभाव पहिले से बैंक को सूचना देकर अपना नाम रजिस्टर करालें जिससे तदनुसार व्यवस्था की जा सके.

(३) निष्काम भावना से ईश्वर के कृपा पात्र आत्माऐं उपरोक्त मन्त्रों को लिख कर बैंक में भेजेंगे तो वह श्री [illegible]
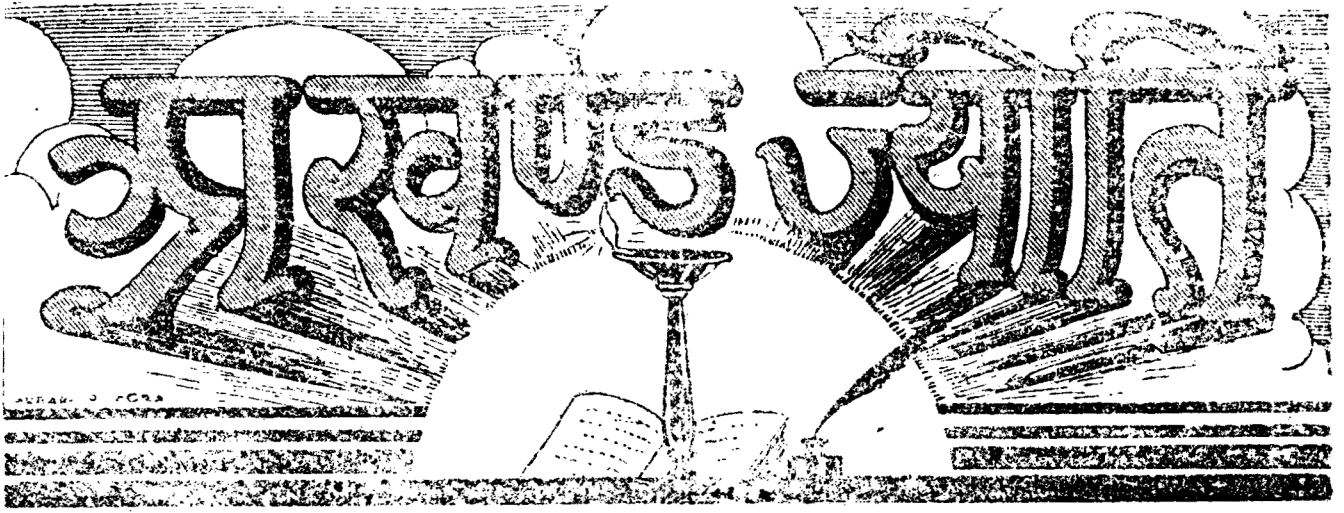
सुधा बीज बोने से पहिले, काल कूट पीना होगा।
पहिन मौत का मुकुट विश्व-हित, मानव को जीना होगा॥

वर्ष ५ | मथुरा, १ अप्रैल सन् १९४४ ई० | अङ्क ४

मानव !

[रचयिता—श्री० महाबीरप्रसाद विद्यार्थी, टेढ़ा-उन्नाव]

मानव ! ये मंजुल मणियोंकी—टूटीलड़ियां अब तो जोड़ो !
नादान ! अरे ! गलते कब से,
अपने ही अश्रु—प्रवाहों में।
जीवन का कण-कण जला रहे,
इस चिन्ता में, इन आहों में।
तुम मृग—तृष्णा में भटक रहे,
कब से इन दुर्गम राहों में॥
किस हाव-भाव से मुसकाती—यह माया, इससे मुँह मोड़ो !
सुख-शान्ति मिलेगी क्या तुमको,
पर-पीड़न में, इस छल-बल में ?
शीतल छाया है यहां कहां,
विष-बल्लरियों के अंचल में !
अविरल आनन्द—सुधा—धारा,
बहती निश्छल—अन्तस्तल में !
जागो, जागो, आंखें खोलो, स्वप्नों की ये कड़ियाँ तोड़ो !
मानव ! ये मंजुल मणियों की, टूटी लड़ियाँ अब तो जोड़ो !

उत्तर स्वर्गसे भूमंडल पर, सत् की अमर ज्योति आती है
वेणु बजाती सत्य-प्रेम की, सुमधुर न्याय गान गाती है

मथुरा १ अप्रैल सन् १९४४ ई०

मर्त्यलोक भवसागर नहीं है।

संसार तीन गुणों के संमिश्रण से बना है इसलिए इसमें निवास करने वाले प्राणी भी तीन प्रकार की प्रकृति के देखे जाते हैं। वेशक, संसार में अन्धकार की अपेक्षा प्रकाश अधिक है, बुराई से भलाई अधिक है, पाप से पुण्य अधिक है, फिर भी तम तत्व की इतनी न्यूनता नहीं है कि उसकी सहसा उपेक्षा की जासके। पाश्चात्य देशों से भौतिकबाद की जो प्रचण्ड हवाऐं चली हैं उसने इस शताब्दी में तमोगुण को और भी अधिक बढ़ा दिया है।

सात्विक बिचार और कार्य मृदुल सुन्दर एवं हलके होते हैं उनका बाहुल्य सुख शान्ति की स्वाभाविक स्थिति उत्पन्न करता है,इस लिए यदि संसार में सतोगुण बढ़े, अधिक रहे तो इसमें कोई अस्वाभाविकता कटुता और कठिनाई नहीं होती। आनन्द कितना ही बढ़जाय उससे मनुष्य ऊबता नहीं किन्तु दुख ,कष्ट और बिघ्नों से मनुष्य थोड़े में ही घबरा जाता है। तामसिक कार्य बड़े कटु-कठोर भी चित्त में विक्षोभ पैदा करता है। अस्वाभाविक स्थिति थोड़ी होने पर भी असह्य प्रतीत होती है।

यों तो सदा से ही तमोगुण, पाप, अकर्म, दुर्व्यवहार, संसार में मौजूद है, परन्तु वर्तमान समय में उसकी वृद्धि और भी अधिक होगई है। यह अधिकता अपनी कठोरता भयंकरता और अस्वाभाविकता के कारण बहुत ही असह्य एवं क्षोभ उत्पन्न करने वाली प्रतीत होती है। ऐसी स्थिति में ऐसा लगता है मानो धर्म का नाश होगया है और चारों ओर अधर्म ही अधर्म का शासन स्थापित होगया है। परिस्थिति को बढ़ा चढ़ाकर नमकमिर्च लगा कर कहने की आदत मनुष्य जाति में बहुत पुरानी है। सेर को सबासेर कहने और अनुभव करने की वृत्ति मनुष्य स्वभाव में रहती है, उससे प्रेरित होकर लोगों की यह धारणाऐं प्रवल होगई हैं कि दुनियां में पाप अधिक है। कोई कोई भावुक गणितज्ञ तो यहाँ तक घोषित करते हैं कि संसार में पाप ९० प्रतिशत, पुण्य ७॥ प्रतिशत और सत्य २॥ प्रतिशत वर्तमान है।

हम सदा से ऐसा मानते रहे हैं कि पुण्य से पाप अधिक नहीं होसकता, प्रकाश से अन्धकार की मात्रा बढ़ नहीं सकती, सफेदी से कालिमा ज्यादा नहीं होती। वेशक पाप की भावनाऐं आज दुनियां में अधिक हैं तो भी वे इतनी नहीं है कि पुण्य से बढ़ी चढ़ी हों, आज क्या ऐसी स्थिति कभी भी नहीं आ सकती जिस दिन इस पृथ्वी पर धर्म से अधर्म बढ़ जायगा, उस दिन वह मनुष्यों के रहने योग्य न रहेगी। कोई मानव प्राणी इस भूतल पर अवतीर्ण होना और रहना पसंद न करेगा। पुण्य में ही रस है। रस ही परमात्मा है। जब यह संसार नीरस होजाय, जीवन के प्रति कोई दिलचस्पी न रहे, संसार में प्रियवस्तुओं को अभाव होजाय तब यह कहा जा सकता है कि संसार पाप मय होगया, परन्तु ऐसा आज तो क्या, शायद कभी भी न हो सकेगा। परमात्मा ने सृष्टि की रचना इस प्रकार की है कि इसमें पुण्य ही सदा अधिक रहेगा।

आनन्द का जहाँ कहीं भी दिग्दर्शन होता है वहाँ भलाई की अधिकता है। स्वास्थ, सौन्दर्य, प्रयत्न, खोज, क्रिया शीलता, उत्साह, उपार्जन,

निर्माण, उल्लास, भाव तरंग, सहयोग, सेवा आदि के गुणों और कार्यों का उद्भव पुण्य, धर्म और सतोगुणी वृत्तियों की प्रधानता से होता है, जब तक इस प्रकार के विचार और कार्यों की अधिकता है तब तक पुण्य का सतोगुण का अभाव नहीं समझना चाहिए। आजकल मुलम्मा साजी की बुद्धि बढ़गई है, हानिकारक कार्यों को आनन्द दायक बनाया जारहा है, तामसिकता के ऊपर सतोगुण की कलाई की जारही है, फिर भी इतना तो मानना ही पड़ेगा कि उसमें जितना आनन्द का अंश है जितना आकर्षण है वह सतोगुण के ही कारण है। तमोगुण के-पाप के-चिन्ह हैं—आलस्य, प्रमाद, अकर्मण्यता, गंदगी, कुरूपता, निराशा, दुर्बलता, जड़ता, अज्ञान. हिंसा, कठोरता, निष्ठुरता, पेटूपन आदि। हम देखते हैं कि संसार में आलस्य से कर्म अधिक है। निष्ठुरता से दया, पेटूपन से सहयोग, जड़ता से सतर्कता, गंदगी से सफाई, कुरुपता से सौन्दर्य, निराशा से आशा, दुर्बलता से सशक्तता, अज्ञान से विवेक, अविश्वास से विश्वास, द्वेष से प्रेम, कठोरता से मधुरता, अधिक है। ऐसी दशा में नहीं कहा जासकता कि संसार में पाप की प्रभुता है अधर्म का शासन है।

अनात्मवान लोग जिन्हें आत्मबोध नहीं होता, जो आत्म सम्मान और आत्म गौरव को भूले हुए हैं वे अपने को सदा हीन, नीच, पतित तथा दुर्भाग्य ग्रस्त ही अनुभव करते हैं। अपनी सभी बातें उन्हें निकृष्ट, तुच्छ प्रतीत होती हैं। इस प्रकार के अनात्मवान् व्यक्ति अपने आत्मा को कुटिल खल कामी, अपने शरीर को नरककुण्ड, अपने संसार को भवसागर, अपने समय को कलिकाल, अपने समाज को सबसे गिरा हुआ, मानते हैं और निराशा के अन्धकार को ही सर्वत्र देखते हैं। अपना सब कुछ बुरा प्रतीत होना दीनता और दासता की हीन मनोवृत्ति है। अपने देश में उत्पन्न हुई महान आत्माओं का हम तिरष्कार करते हैं, परन्तु दूसरे देश का मामूली आदमी हमारी दृष्टि में बहुत ऊंचा जँचता है। यह हीनता की भावना हमारी नस नस में समागई है, अपनी हर चीज को हीनता के रंगीन चस्मे में होकर ही देखते हैं। जब कोई व्यक्ति इस लोक को मर्त्यलोक को अपनी दुनियाँ को तिरष्कार की दृष्टि से देखता हुआ उसे भवसागर, कहता है और उससे उदासीन होकर, उपेक्षा भाव रखकर एक कल्पित स्वर्ग के स्वप्न में झोंके लेता है तब उस हीनता की भावना का एक शर्मनाक चित्र सामने उपस्थित होता है।

ऊपर आकाश में लाखों योजन ऊँचा कोई काश्मीर सा सुरम्य सोने चाँदी का नगर बसा हुआ है, उसमें भगवान जी राज करते हैं, देवी देवता राजकर्मचारी हैं, खूब नाच गान होता रहता है बढ़िया खाने मिलते हैं, ऐश आराम के सब साधन हैं, ऐसी कल्पनाओं के साथ एक स्वर्ग का स्वप्न देखना और उसके लिए अपनी कर्तव्य भूमि के उत्तरदायित्वों की ओर से उदासीनता, उपेक्षा एवं तिरस्कार की भावनाऐं धारण करना, वैसा ही है जैसा कि शेखचिल्ली ने कल्पित बीबी और बाल बच्चों के स्वप्न में शिर पर रखा हुआ घड़ा फोड़ डाला था और मजूरी पाने के स्थान पर मार खाने का परिणाम भुगना था।

जो इस लोक का सुख नहीं पासकता वह स्वर्ग का भी सुख नहीं पा सकेगा। जिसे यह लोक भवसागर प्रतीत होता है उसे परलोक भी नरक सा लगेगा। जिसे यहां के लोग कपटी, कुचाली, धूर्त स्वार्थी, पापी दिखाई पड़ते हैं उसे स्वर्ग में देवता भी ऐसे ही लगेंगे। इन्द्र को व्यभिचारी, बृहस्पति को नास्तिक, चन्द्रमा को गुरुपत्नी गामी, बुध को पिताद्रोही, यम को हत्यारा, शंकर को नशेबाज बाराह का अभक्ष भोजी, दुर्गा को मांसाहारी, आदि समझेंगे। भगवान पर भी अनेक दोषों के आरोपण की गुंजायश है। जिन्हें इस लोक में सर्वत्र पाप ही पाप दिखाई पड़ता है उन्हें वैसी ही सामिग्री

स्वर्ग में भी मिलजायगी। इस प्रकार के पापी वहाँ भी दीख पड़ेंगे और अन्ततः भवसागर और स्वर्ग में कुछ विशेष अन्तर न रहेगा।

अपने पाठकों को उपरोक्त पंक्तियों में हमने यह बताने का प्रयत्न किया है कि ईश्वर ने हमें जिस पुण्य भूमि में कर्तव्य करने के लिए, जीवन का सद्व्यय करने के लिए भेजा है वह तीर्थ भूमि भवसागर नहीं है। उसमें पापों और कष्टों की अधिकता दिखाई पड़ती है तो भी यथार्थ में यहाँ पुण्य, और सत्य ही अधिक है। तत्वदर्शी ऋषियों ने इस वास्तविकता को अपनी सूक्ष्म दृष्टि से भली भाँति समझा था और निस्संदेह होकर मुक्त कंठ से घोषणा की थी "जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" निश्चय ही कल्पित स्वर्ग की अपेक्षा यह वसुधा वसुन्धरा जिस पर हमने जन्म धारण किया है अनेक गुनी श्रेष्ठ है। दुख और पाप यहां हैं परन्तु पुण्य और सत्य उनसे भी अधिक यहाँ हैं। इस लोक से हमें उदासीन या निराश होने की नहीं वरन् इस बात की आवश्यकता है कि इस लोक की समस्याओं में पूरी दिलचस्पी लें, इसे अधिक सुन्दर और सुसम्पन्न बनावें।

हम मर्त्यों के लिए परमात्मा ने यह मर्त्यलोक ही क्रीड़ा भूमि बनाई है, हमें उसमें पुण्य, पवित्रता और महानता की दृष्टि रखनी चाहिए, इसे ही अपना स्वर्ग समझना चाहिए, यहाँ जो बाधा तथा व्यथाऐं हैं उन्हें अपने लिए एक चुनौती समझना चाहिए और उन्हें दूर करने के लिए प्रयत्न पूर्वक जुट जाना चाहिए। स्मरण रखिए मनुष्य शरीर देवताओं को भी दुर्लभ है, स्मरण रखिए जन्म भूमि स्वर्ग से भी गरीयसी है काल्पनिक स्वर्ग स्वप्न में विचरण करने की अपेक्षा यह अच्छा है कि आप इस पुण्य भूमि में आध्यात्मिकता का सात्विक आनन्द उपलब्ध करें और सत्कर्मों द्वारा अपने जीवन को धन्य बताते हुए परमपद प्राप्त करें।

स्वाध्याय का महत्व

जिसे उत्तमोत्तम पुस्तकों के पठन-पाठन का सौभाग्य प्राप्त होता है, उसके लिये चंचल लक्ष्मी का शुष्क विनोद किस काम का ?

— नीतिकार

हरे-भरे बन में, भूखों मरने वाले पशु में, और पढ़ने के इतने साधन होते हुए भी ज्ञान-हीन रहने वाले मनुष्य में, क्या अन्तर है ?

—जिज्ञासु

गरीबों को दरिद्रता से छुड़ाने की, दुखियों का दुःख दूर करने की, शरीर तथा मन को नीरोग बनाने की और बीमारों का दुःख भुला देने की जितनी शक्ति ग्रन्थों में होती है, उतनी संसार की और किसी भी चीज़ में नहीं।

—मार्सडन

अच्छी पुस्तकों के पास होने से हमें अपने भले मित्रों के साथ न रहने की कमी नहीं खटकती। जितना ही मैं पुस्तकों का अध्ययन करता गया, उतना ही मुझे उनकी विशेषतायें मालूम होती गई। जिसे पुस्तकों के पढ़ने का शौक़ है, वह सब जगह सुखी रह सकता है।

—महात्मा गांधी

मैं नरक में भी उत्तम पुस्तकों का स्वागत करूँगा, क्यों कि इनमें वह शक्ति है कि जहां ये होंगीं, वहां आप ही स्वर्ग बन जायगा।

—भगवान तिलक

पुराने कपड़े पहिन कर नई किताबें खरीदिये।

—आस्टिन फेल्पस्

चार मित्रों से बात-चीत

(श्री० श्री प्रकाशजी, एम० एल० ए०)

सबको ही कुछ न कुछ खब्त होता है। मुझे भी कई बातों का खब्त है। उनमें एक यह है कि जब किसी विदेशी से मित्रता हो जाती है उन्हें सहृदय पाता हूं, साथ ही यह समझता हूँ कि हमारे देश में बहुत दिनों से रहने के कारण वे पर्याप्त अनुभव भी प्राप्त कर चुके हैं, तो मैं उनसे किसी सुअवसर पर यह पूछता हूँ—'आप कृपा कर यह बतलावें कि क्या कारण है कि हमारे देश में इतने विशेष पुरुषों के रहते हुये, इतने बड़े-बड़े आन्दोलनों के होते हुए भी देश कुछ उन्नति नहीं कर रहा है। ऐसा मालूम होता है कि हम ज्यों के त्यों पड़े हुए हैं ?" अवश्य ही हमारे मित्र इससे चकित होते हैं, उत्तर देते संकोच करते हैं और शिष्टता के नाते क्षमा चाहते हैं ; पर मैं उन्हें छोड़ता नहीं और उनको उत्तर देने के लिये बाध्य करता हूं। मैं नहीं कह सकता पर सम्भव है कि विशाल हृदय और विशाल मस्तिष्क के पाठक विशाल विषयों का एक क्षण के लिये छोड़ कर मेरी छोटी-सी बात सुन लें और इन मित्रों के उत्तर पर ध्यान दें। विषय संकुचित मालूम पड़ता हो पर इसका परिणाम व्यापक रहा है और इसी कारण मेरी बुद्धि में इसका बड़ा भारी महत्व है।

मेरे पहले मित्र एक वृद्ध ईसाई पादरी हैं। ३६ वर्षों से भारत में ईसाई मत के प्रचार में तो उतना नहीं, पर सपत्नीक देश के दरिद्र नर नारियों की सामाजिक सेवा में वे लगे रहे हैं। मेरे हृदय में उनके लिये बड़ा सत्कार और प्रेम है उनका उत्तर थोड़े में यह है कि 'तुम लोग अपने काम में गर्व नहीं लेते।' विस्तार से उन्होंने यह बतलाया कि यहां पर जब किसीको कोई नौकरी चाहिये, तो अतिशयोक्ति-पूर्ण शब्दों में वह दरखवास्त देता है। बहुत ही 'विनय' और 'सम्मान' के साथ वह आरम्भ करता है। अन्त में वह प्रतिज्ञा करता है कि यदि स्थान मिल जावेगा तो वह सदा अपने मालिक की शुभ कामना करेगा; पर स्थान मिलते ही वह अपने काम अर्थात् अपनी जीविका के साधन को ही खराब समझने लगता है। अन्य साथियों से मिल कर काम खराब करने के लिये षड्यन्त्र रचना है और मालिक की नाकों में दम कर डालता है और देशों में भी लोग नौकरी की दरख्वास्त देते हैं। साधारण शब्दों में प्रार्थना-पत्र लिखते हैं और जब स्थान मिल जाता है, तो इस तरह काम करते हैं जैसे संसार की गति उन्हीं पर निर्भर करती है और वे यदि काम छोड़ दें, तो संसार डूब जाय। बात इस पादरी मित्र ने बहुत ठीक कही। हमें अपने काम का गर्व नहीं। दुख तो इसका है कि इस मुल्क की परम्परा में अपने काम का गर्व करने का आदेश है। जाति-भेद इसी पर निर्भर करता है। एक जाति का आदमी दूसरी जाति के आदमी द्वारा अपनी मान-मर्यादा नहीं चाहता। वह अपनी जाति वालों के ही बीच अपना उपयुक्त पद और स्थान चाहता है। वह अपनी जीविका के साधनों का बड़ा आदर सत्कार करता है। बढ़ई अपने औजार की और दूकानदार अपने बहियों की निश्चित तिथियों पर पूजा करता है। पर आज दासता के कारण हमारे यहाँ वर्ण शंकर हो गया है। इस अपनी परम्परा भूल गये हैं। हम अपना काम छोड़ दूसरों का काम उठाते हैं। एक काम छोड़ दूसरा काम लेते रहते हैं। अपनी असफलता का दोष दूसरों को देते रहते हैं। स्वयं दुखी रहते और दूसरों को दुखी करते हैं। कोई काम ठीक कर न सकने के कारण अपने को खराब करते हैं। काम को खराब करते हैं "स्वधर्मे निधनं श्रेयः" यह आदेश हम भूल गये। हम अपने काम में गर्व नहीं लेते।

दूसरे मित्र एक वृद्ध सरकारी कर्मचारी आई० सी० एस० के सदस्य हैं। ३० वर्षों से अधिक

भारत में गवर्नमेन्टी नौकरी कर हाल में पेन्शन लेकर वापस स्वदेश गये । न जाने कैसे मुझसे उनसे बड़ी मैत्री हो गई । वही सवाल मैंने पेश किया। उत्तर मिला—'तुम लोग जिम्मेदारी नहीं समझते' विस्तार में इसका अर्थ यह है कि व्यक्ति का समष्टि की तरफ जो कर्तव्य होता है, उसे हम नहीं जानते। जो काम उठाया, उसे करना चाहिए, जो वादा करना चाहिए उसे पूरा करना चाहिए—यह सब गुण हम भूल गये । किसी का किसी पर विश्वास नहीं रह गया। खाने की दावत तो हो न मेजवान को यह विश्वास कि मेहमान समय से आवेंगे, न मेहमान को विश्वास कि, समय से जाने पर खाना मिल जायगा। न गृहस्थ को विश्वास कि धोबी और दरजी वादे पर कपड़ा दे जायेंगे। न धोबी दरजी को विश्वास कि समय पर दाम मिल जायगा। रेलगाड़ी पर चढ़ने वाले को यह विश्वास नहीं कि पहले से बैठे मुसाफिर उन्हें स्थान देगें, पहले से बैठने वाले को यह विश्वास नहीं कि नया मुसाफिर धीरे से आकर उचित स्थान लेगा और व्यर्थ का शोर न करेगा न और प्रकार से तङ्ग करेगा। सड़क पर चलने वालों को यह विश्वास नहीं कि आगे चलने वाला अपना छाता इस तरह ले चलेगा कि उसकी नोक से मेरी आंख न फूट जायगी। या पीछे चलने वाला मुझे व्यर्थ धक्का न देगा। किसीको किसी पर यह विश्वास नहीं कि केले नारंगी का छिलका या सूई पिन आदि इस तरह वह न छोड़ेगा, जिससे दूसरों को कष्ट पहुंचेगा। मँगनी की चीज समय पर वापस करेगा, इत्यादि इत्यादि हम केवल अपनी तात्कालिक सुविधा देखते हैं। हम सारे संसार को अपने आराम के लिए बना समजते हैं, दूसरों के प्रति—अपने कर्त्तव्य का अनुभव नहीं करते । इसी कारण हम सब एक दूसरे के प्रति अविश्वसनीय और अस्पृष्य हो गये हैं। अपना धार्मिक आदेश भूल गये—'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत' । 'हम अपनी

तीसरी व्यक्ति एक स्त्री हैं। सात-आठ वर्षों अपने को भारतीय बना कर बड़े प्रेम और श्रद्धा बड़ी तत्परता से भारत की सेवा कर रही हैं असहयोग आन्दोलन में जेल भी जा चुकी हैं। व कारण से भारतीयों का निकट तम अनुभव इ कार्य-क्षेत्र में हुआ है। इनको भी मैंने घेरा। उत्तर था—'तुम लोग बड़े आलसी हो, अर्थात लोगों ने श्रम का महत्व ही नहीं पहचाना है। मेह करना तो हमने मरभुक्खों का काम समझ रक्खा है। बड़े लोगों का काम तो केवल बैठे रहना हम भूल गये कि संसार में जो बड़े हुए हैं, वे अथक परिश्रमी रहे हैं । जब हम परिश्रम ह करेंगे, तो हम सफलता कैसे पावेंगे । आरम्भ तो हम है, पर हम में लगन नहीं है । इसी का न हम अपने रोजगार में, अपनी न गृहस्थी सार्वजनिक जीवन में ही सफल होते हैं। रोने,प झीकने में जितना समय हम बिताते हैं, उतना काम में बिताते, तो हम देश की और अपनी क पलट कर सकते हैं।

चौथी व्यक्ति एक बड़ी वृद्धा स्त्री थीं । स प्रसिद्ध थी। मेरे कुल से उनका बड़ा प्रेम था । पितामही तुल्य थीं। उनको भी मैंने तङ्ग कि 'आपने अपना ४० वर्ष हमारे देश की वि सेवाओं में लगा दिया। आपको बतलाना ही कि हमारा क्या दोष है, जिससे हमारी उन्नति होती' थोड़े में उनका उत्तर था 'तुम लोगों में उ नहीं है । विस्तार से उदाहरण दे दे कर बतलाया कि भारत में लोग दूसरों को आगे बढ़ाते। अपने ही आगे रहना चाहते हैं। नव-युवकों को अपनी योग्यता दिखलाने को नहीं देते। उनके मरने के बाद उनका क खराब हो जाता है। वास्तव में वृद्धा की बातें थी। अन्त तक पिता पुत्र को घर का काम बतलाता, कितने ही कुटुम्ब इसके कारण गये। बड़े गुणी अपनी विद्या लेकर मर गये

कारण कितने ही वैज्ञानिक आविष्कार, औषधि आदि लुप्त हो गई। पेशों में इतनी प्रतिद्वन्दिता हो गई है कि बड़ा छोटे को काम नहीं सिखलाता। सार्वजनिक जीवन में तो इतनी वीभत्सता दीख पड़ती है कि चित्त व्याकुल हो जाता है। कितना काम बिगड़ता है, इसकी तरफ ध्यान नहीं दिया जाता।

सारांश यह कि ठीक समय से उपयुक्त काम न उठा कर और अपने काम में गर्व न रख कर, उसके करने में दूसरों के प्रति अपनी जिम्मेदारी को न अनुभव कर, अपने काम की एक तफसील को समझ कर, उसमें दत्त चित्त होकर परिश्रम के साथ उसे स्वयं न कर और उदारता के साथ उसे दूसरों को न सिखा कर हम अपना नाश कर रहे हैं। चारों मित्रों ने एक एक अक्षर हमारे दोष का बतलाया, उन सबको मिलाकर मैंने ऊपर पूर्ण कर दिया। यदि और भी कोई सूत्रवत सत्य जानना चाहे, तो मैं कहूँगा कि हम नागरिक कर्तव्यों और अधिकारों को भूल गये हैं। बड़े से बड़े नेता के होते हुए भी हम साधारणजन उनसे कोई लाभ नहीं उठा रहे हैं। हम उनकी मूर्ति की स्थापना करते हैं, उनका जय जयकार पुकारते हैं और इसी में अपने धर्म और कर्तव्य की इति श्री समझते हैं। हम उनके कहे अनुसार चलते नहीं। उनके आदेशों के अनुरूप अपने जीवन का संघटन नहीं करते यही कारण है कि हम वहीं के वहीं हैं। संसार वेग से चला जा रहा है, हम तटस्थ हैं, सामने सब कुछ है पर हम हाथ पर हाथ दिये किंकर्तव्यविमूढ़ की तरह बैठे हुये हैं। हम किसी दूसरे की खोज में हैं, जो आकर हमारा काम कर दे। दूसरा क्या कर सकता है—जब कि हम खुद नहीं कुछ करना चाहते?

—ग्रहस्थ गीता.

भिक्षा जीवियों से अनुरोध?

(परमहंस श्री१००८महात्मा केवलानंदजी महाराज)

साधु दो प्रकार के होते हैं, एक आत्मार्थी दूसरे परमार्थी। प्राचीन काल में परमार्थी साधु ही थे। व्यास, बाल्मीक, धन्वन्तरि, परशुराम, चर, सुश्रुत, नारद, वशिष्ठ, कपिल, कणाद, पातञ्जलि, शंकराचार्य, चाणक्य आदि संत अपने अपने ढंग से परमार्थ में प्रवृत्त रहते थे। अपने बहुमूल्य परमार्थ के बदले दान रूप में जनता से अन्न वस्त्र ग्रहण करने का उन्हें अधिकार था, उनके लिये यह उचित भी था। अब भी जो संत परमार्थी हों, लोक सेवा के लिए अपना जीवनदान जिन्होंने किया हो उन्हें बदले में भिक्षा या दान लेने का अधिकार है। किन्तु जो लोग आत्मार्थी हैं, अपने स्वर्ग, मुक्ति, आनन्द के लिए कोई साधना उपासना, पूजा पुरुषार्थ करते हैं तो यह उनका एक आध्यात्मिक व्यापार है। इसके लिए किसी दूसरे से न तो भिक्षा मांगनी चाहिए और न स्वीकार करनी चाहिए।

यदि कोई साधु जप तप द्वारा स्वर्ग या मुक्ति की कमाई कर रहे हैं तो यह उनका निजी व्यापार है आत्मार्थी साधु को अपने भोजन वस्त्र का स्वयं प्रबंध करना चाहिए, क्योंकि यदि उन्हें स्वर्ग मिलता है तो किसी दूसरे को क्या लाभ? और बिना बदला दिये किसीसे लेना उचित नहीं यह तो एक प्रकार का कर्ज है जिसे चुकाये बिना छुटकारा नहीं मिलसकता। आत्मार्थी साधु को अपनी कमाई पर ही निर्भर रहना चाहिए। जो साधु परमार्थ मार्गी हैं, संसार की भलाई के लिए कोई कार्य करते हैं, वे दान पर निर्वाह कर सकते हैं।

हम अपने साधु वेशधारी या दानभिक्षा पर निर्वाह करने वाले अन्य व्यक्तियों को स्पष्ट रूप से बतादेना चाहते हैं कि समय के बदलते हुए प्रवाह को आंख खोलकर देखें और अपने आचरणों को दुरुस्त करलें अन्यथा उन्हें पीछे बहुत पछताना पड़ेगा।

अच्छी आदतें डालने का अभ्यास

गायक जब बाजा बजाने का भली भांति अभ्यास कर लेता है तो उसे इस बात की जरूरत नहीं पड़ती कि बाजे के स्वर स्थानों पर दृष्टि रखे या उंगलियों को देख देख कर चलावे। वह गाने पर अपना चित्त लगाता है और दर्शकों की ओर देखता जाता है किन्तु बाजे पर उसका हाथ जहाँ का तहां पड़ता है, कहीं जरा भी त्रुटि नहीं होती। जप करने वाले मुंह से मन्त्रोच्चारण करते रहते हैं पर उनका मन दूर दूर उड़ता रहता है। कुम्हार, लुहार, सुनार आदि के हाथ ऐसे सध जाते हैं कि उनका मन उस काम में न लगा हो तो भी उनका शरीर निश्चित कार्य को ठीक प्रकार पूरा करता रहता है। इस प्रकार बिना अधिक सोच बिचार किये भी जो कार्य होते रहते हैं उन्हें अभ्यस्त क्रिया या अनैच्छिक क्रिया कहते हैं। हमारे शरीर में इसी शक्ति का सब से अधिक बोलबाला है। हमें मालूम भी नहीं होता कि सांस चलती रहती है, दिल धड़कता रहता है, खून दौड़ता रहता है। लोग समझते हैं कि यह कार्य किसी अदृष्ट शक्ति की कृपा से होते हैं यह अदृष्ट शक्ति और कुछ नहीं हमारे मन का एक गहरा भाग है जिसे गुप्त मन-गुप्त मन या (Subconscsnes) कहते हैं।

अपने पूर्व संस्कारों में जकड़ा हुआ मनुष्य जब अपनी इच्छाओं के बशीभूत होकर जन्म लेना चाहता है और गर्भ में प्रवेश करता है तब भी यह सुप्त मन क्रिया शील रहता है, गर्भ में जैसे ही अनुकूल अङ्ग बने कि गुप्त मन के अभ्यास के कारण रक्त संसार आदि की अनैच्छिक क्रियाए आरम्भ हुईं। घड़ी में चाबी दे देने पर जैसे वह बहुत समय तक चलती रहती है या लट्टू को एक बार फिरा देने से वह बहुत देर अपने आप घूमता रहता है उसी प्रकार शरीर की क्रियाऐं आरम्भ हो जाती है और जब तक उस यन्त्र में शक्ति रहती है कार्य चलता रहता है। एक बार साइकिल के पहिले को जोर से घुमादेने पर वह बहुत दूर तक अपने आप दौड़ती चली जाती है फिर भी उसका संचालक वही है जो उसकी गद्दी पर बैठा हुआ है। उसमें योग्यता हो तो लुढ़कती हुई साइकिल की गति में प्रयत्न पूर्वक परिवर्तन भी कर सकता है। कई योगाभ्यासी प्राणायाम द्वारा सांस का चलना और इच्छा द्वारा रक्त का दौड़ना रोक देते हैं समाधि की अवस्था में यह दोनों या शरीर की अन्य क्रियाऐं पूर्ण रूप से बन्द हो जाती है और जब योगी चाहता है तो फिर चलने लगती है।

मन की संकल्प शक्ति में चेतना तो है पर उससे कुछ करते धरते नहीं बन पड़ता। जैसे तुम सोचो कि मेरी आंख आज रात को तीन बजे खुल जाय तो अच्छा है परन्तु यह सोच विचार यदि गुप्त मन तक न पहुंचा तो वह बिचार हवा में उड़ जायगा और कुछ भी प्रयोजन सिद्ध न होगा किन्तु शरीर की अनैच्छिक क्रिया का अधिपति गुप्त मन यदि अच्छी तरह इस बात को स्वीकार करले कि हाँ, मुझे रात को तीन बजे जागना है तो जरूर ही नियत समय पर निद्रा भंग हो जायगी। शरीर के संचालन में अनैच्छिक क्रिया का अत्यन्त महत्व पूर्ण स्थान है। बुरी या भली आदतें शरीर और मन दोनों में ही पड़ जाती है हम उन्हें छोड़ना चाहते हैं पर छूटती नहीं कारण यह है संकल्प करने वाला बाहरी मन एक चेतना है और भीतरी मन के हाथ में सारी कुंजी है। इसलिए इन दोनों मनों के सामंजस्य से जो कार्य होता है उसीमें सफलता मिलती है। हम चाहें तो प्रयत्न पूर्वक इन क्रियाओं में एकता उत्पन्न करके बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं।

जब हम कुछ दिन दिन में दो बार खाते रहते हैं तो नियत समय पर भूख लगती है। इसी प्रकार

सोने, जागने, शौच जाने आदि के नियम के संबंध अनैच्छिक क्रिया को सूचना दे दी जाती है तो नियत समय पर वह काम होने की आदत पड़ जाती है। किन्तु यदि उसे कोई सूचना न दीजाय तो भूख आदि की कुछ ठीक व्यवस्था न रहेगी। यदि भोजन को कोई समय निर्धारित न करो और चाहे जब खाते रहो तो कभी सच्ची भूख न लगेगी। देखा गया कि भोज्य पदार्थों में यदि कुछ अपवित्र वस्तु हो या किसी अन्य कारण से घृणा हो जाय तो भूख मर जायगी। बाह्य मनमें भले बुरे बिचार आते रहते हैं उनका कोई विशेष प्रभाव नहीं होता किन्तु यदि कोई भाव तीव्र होने के कारण गहरे उतर जावें तो उनका प्रभाव तुरन्त ही होता है। भय लगने पर बालक गश खाकर गिर पड़ते हैं, क्रोध में एक प्रकार का उन्माद आजाता है और नाड़ियों की चेतनता जाती रहती है, धर्म या युद्ध के जोश में लोग शिर तक कटा देते हैं और मरते दम तक दुखी नहीं होते।

हमारा विचार करने वाला बाहरी मन जब बार बार और गंभीरता पूर्वक किसी बात को स्वीकार करता है या नित्य प्रति उस काम को दुहराता है तो गुप्त मन उस बात को मान लेता है और शरीर को प्रायः उसी सांचे में ढाल देता है। यदि शौच जाने के नियत समय का ध्यान रखें तो ठीक वक्त पर मल त्याग की इच्छा होगी। यदि विशेष रूप से कुछ समय पूर्व नियत समय पर साफ दस्त होने का विशेष चिन्तन किया जाय तो निश्चय ही पेट साफ हो जायगा इसी प्रकार यदि उसकी उपेक्षा की जाय और समय को बिलकुल भुला दिया जाय तो अक्सर वह क्रिया निर्बल और शिथिल पड़ जाती है और उपरोक्त दोनों बातों में से जिसे भी कुछ काल तक निरंतर किया जाय वही स्वभाव में आजाती है।

गुप्त मन को प्रभावित करके उसे सूचना देकर [illegible]

छुटकारा मिल सकता है। यदि गुप्त मन को इस प्रकार की सूचनाऐं बराबर दीजायें कि "अब मैं निरोग होगया हूं और मेरे सब भीतरी अङ्ग ठीक प्रकार काम कर रहे हैं।" तो उस सूचना को वह ग्रहण कर लेगा और ऐसे ही जीवन कोषों की रचना करने लगेगा जो निरोग स्वस्थ तथा सक्षम हों। इसी प्रकार जो लोग बीमारी या रोग का चिन्तन कर करके दुखी होते रहते हैं उनके शरीर में कोष उसी सांचे में ढल जाते हैं। यदि तुम अपने शरीर और मन में अच्छी उपयोगी आदतें उत्पन्न करना चाहते हो तो उचित है कि बार बार अपने मन में स्वास्थ्य और आनन्द के विचार करो। अपने को समर्थ समझो और उच्च सत्ता—परमात्मा से प्रेम करके उसके उच्च गुणों को आकर्षित करके अपने अन्दर धारण करो। ऐसा करने से गुप्त मन शरीर और मस्तिष्क में सद्गुण उत्पन्न करेगा।

धैर्य पूर्वक भय का मुकाबिला करने से कुछ तो स्वयं ही नष्ट हो जाती हैं। जैसे समुद्र की लहरें पैरों तक आकर लौट जाती हैं।

× × ×

जैसे किसी पहाड़ी पर चढ़ना दुर्गम दिखाई देता है। उसी तरह विपत्तियों का सामना करना भी असह्य मालूम पड़ता है। परन्तु जैसे धीरे धीरे पहाड़ी पर चढ़ जाते हैं, उसी तरह आपत्ति भी आसानी से धैर्य रखने पर धीरे २ दूर हो जाती हैं।

× × ×

जिस कर्त्तव्य से तुम दूर होकर भागते हो, वह तो तुम्हारा सुधार करने वाला है। जिस व्यसन को तुम पकड़ने दौड़ रहे हो, वह तुम्हारा शत्रु है।

× × ×

मनुष्य जीवन के आधे दुःख परोपकार, पारस्परिक दया उत्साह से निवारण हो सकते हैं।

× × ×

विचार शक्ति से जीवन निर्माण

(ले०-श्री०भीकमचन्द कपुरचन्दजी पेरवावाला शिवगंज)

आप उसी बात को सोचिए उसी बात को अपनी जबान से निकालिए जिसे चाहते हैं कि वह सत्य हो। बहुत से मनुष्य कहा करते हैं कि भाई! अब हम थक गये, बेकाम हो गये; अब परमात्मा हमें सँभाल ले तो अच्छा हो। वे इस रोने को रोते रहते हैं कि हम बड़े ही अभागे, कम नसीब हैं, हमारा भाग्य फूट गया है, दैव हमारे विरुद्ध हैं, हम दीन हैं, गरीब हैं। हमने सिरतोड़ परिश्रम किया, उन्नत होना चाहा, पर भाग्य ने हमें सहायता न दी। पर वे बेचारे इस बात को नहीं जानते कि इस तरह का रोना रोने से, अन्धकारमय, निराशा जनक विचार रखने से, हम अपने हाथ अपने भाग्य को फोड़ते हैं, उन्नति रूपी कौमुदी को काले बादलों से ढक देते हैं।

वे यह नहीं जानते हैं कि इस तरह के कुविचार हमारी शान्ति, सुख और विजय के घोर शत्रु हैं। वे यह बात भूले हुए हैं कि इस तरह के विचारों को मन से देश निकाला देने ही में मङ्गल है। ऐसे विचारों को मनमें स्थान देना अपने हाथ अपने पैरों पर कुठाराघात करना है। कभी एक क्षण के लिए भी अपने मनमें इस विचार को स्थान मत दो कि हम बीमार हैं—कमजोर हैं। इस तरह के विचार शरीर पर इनके आक्रमण होने में सहायता देते हैं। हम सब अपने विचारों ही के फल हैं। उच्चता, महानता पवित्रता के विचारों से हमें आत्म-विश्वास प्राप्त होता है। ऊँची उठाने वाली शक्ति मिलती है और ऊँचे दरजे का साहस प्राप्त होता है।

यदि आप किसी खास विषय में अपनी अपूर्वता प्रकट करना चाहते हैं तो आप अपने अभिलषित विषय में उच्च आदर्शों को लिए हुए प्रवेश होजाइये और तब तक आप अपने अन्तःकरण को वहां से तिलमात्र भी मत हटाइये, जब तक आपको यह न मालूम हो जाये कि सफलता होने में अब कुछ भी सन्देह नहीं है।

हमारे आदर्श ही हमारे चरित्र के सङ्गठनकर्ता हैं और उन्हीं में यह प्रभाव है जो जीवन को वास्तविक जीवन में परिणत करता है। जैसे हमारे आदर्श होते, जैसी हमारी मानसिक अभिलाषायें होती हैं, जैसे हमारे हार्दिक भाव होते हैं ठीक उन्हीं की झलक हमारे मुखमण्डल पर दिखाई देने लगती है। हो नहीं सकता कि इनका भाव हमारे चहरे पर न झलके, इनका प्रतिबिम्ब आँखों में न दीखे। अतएव हमें अपने आदर्श को अपने मनो-भाव को अपने विचार प्रवाह को श्रेष्ठता और दिव्यता की ओर झुका हुआ रखना चाहिये। हमें निश्चय पूर्ण बिश्वास कर लेना चाहये कि निकृष्टता, दीनता, निर्बलता, आधिव्याधि, दरिद्रता और अज्ञान से हमारा कोई सरोकार नहीं। हमें इस बात का दृढ़ विश्वास होना चाहिए कि हमारे हाथ से हमेशा उत्तम ही कार्य होगा, बुरा कभी न होगा।

हमें अपने जीवनोद्देश को सफल करने में श्रद्धा की—आस्था की भी बड़ी आवश्यकता होती है। यदि यों कहा जाय कि मनो-वांछित पदार्थ का मूल श्रद्धा ही होती है तो कुछ भी अतिशयोक्ति न होगी। यदि यों कहा जाय कि श्रद्धा-आस्था ही हमारे आदर्श की बाह्यरेखा हैं, तो कुछ भी अनुचित न होगा। पर हमें श्रद्धा ही तक न ठहर जाना चाहिये वरन् देखना चाहिए कि श्रद्धा के परे भी कोई पदार्थ रहा हुआ है या नहीं ? विचार करने से गहरी दृष्टि डालने से मालूम होता है कि श्रद्धा, आशा, हार्दिक लालसा आदि मनोवृत्तियों के पीछे एक अलौकिक दिव्य पदार्थ—सत्य-रहा हुआ है। यह वह सत्य है जो हमारी प्रकृत अभिलाषाओं को सुस्वरूप प्रदान करता है।

उत्पादक शक्ति का यह एक नियम है कि जिसका
। दृढ़ता पूर्वक विश्वास करते हैं, वह हमें अवश्य
प्त होता है यदि आप इस बात का पक्का वि-
ास करें कि हम समृद्धशाली होंगे, हम प्रभावशाली
ष होंगे, समाज में हम वजनदार गिने जावेंगे,
आप में एक प्रकार की विलक्षण उत्पादक शक्ति
उदय होगा और यह आपके मनोरथों पर
ालता का प्रकाश डालेगी।

यदि आप अपने जीवनोद्देश को सफल करना
ते हैं, यदि आप अपने आदर्श को कार्य रूप में
णत करना चाहते हैं तो आप अपने सम्पूर्ण
ार प्रवाह को अपने उद्देश की ओर लगा
ें। एक ही उद्देश की ओर अपने मन, वचन,
ा को लगा देने से संसार में बड़ी २ सफलतायें
होती दीख पड़ती हैं। आप उन पदार्थों की
ा कीजिये जो दिव्य हों, आप यह विश्वास
ीजिये कि हमारे प्रयत्न उत्साह पूर्वक होने से
ोई उच्च दिव्य और महान् पदार्थ प्राप्त होने
है और हम अपने जीवनोद्देश्य पर पहुंच रहे
ाप इस विचार में तल्लीन हो जाइये कि
। शाश्वत उन्नति हो रही है और हमारी
ा का एक एक परमाणु दिव्यता की ओर
ा है।

ज्ञानियों की प्रशंसा के बजाय ज्ञानवानों की
ियाँ ठीक हैं। क्यों कि उनकी झिड़की से
को अपने दोष का ज्ञान हो जाता है, परन्तु
। दोषों को भी गुण बतला कर बढ़ाई
ते हैं जो कि अत्यन्त हानिकारक होती हैं।

× × ×

ुतः विद्वान् वही भाग्यवान होता है जो
ुमार्ग पर चलकर दूसरों को भी सद्-
ता रहता है।

क्रोध मत करिए।

(श्री० वटेश्वर दयालजी शास्त्री, भिण्ड)

क्रोध और आतुरता के मूल में क्या अहंकार नहीं है? क्रोध प्रायः तभी आता है, जब कोई हमारी इच्छा की पूर्ति नहीं करता। क्या दूसरा मनुष्य इसके लिये वाध्य है? उसे ऐसा समझ लेना क्या अहंकार नहीं है? और क्या आतुरता इस बात को नहीं सूचित करती कि मनुष्य समाज को तथा प्रकृति को वश में रखने की सत्ता मुझे प्राप्त है? वह सत्ता वास्तव में जिसके पास होती है, उसे आप अधीर और आतुर न पायेंगे। सत्ता शासन के लिए नहीं, कार्य की सुव्यवस्था और सुचारुता के लिए मिलती है। सत्ता जहां सुव्यवस्था में असफल होती है, वहां प्रेम की जीत अवश्य मेव होती है।

जो अपने प्रति कठोर और साथियों के प्रति सहृदय होता है, वह विना सत्ता के ही शासक हो जाता है। उसकी आज्ञायें प्रेम के संदेश होते हैं और साथी उनके लिए उत्सुक रहते हैं। पर जहाँ अपने प्रति रियायत के विशेषाधिकार का भाव हो और साथियों के प्रति कठोरता का, तो वहाँ सत्ता का शासन भी बेकार होता है। उसका पुरस्कार है—अप्रतिष्ठा। कड़ाई के साथ नियमों का पालन कार्य की सुचारुता और सुव्यवस्था के लिये अनिवार्य है। जो सेवक इसकी उपेक्षा करता है, वह दूसरों के आराम को अपनी सुविधा पर बलिदान कर देना चाहता है।

ईश्वर कहां हैं ?

(ले०—नन्दकिशोर उपाध्याय, बुढ़नसी)

जिन खोजा तिन पाइयां गहरे पानी पैठ।
मैं बौरि खोजन गई रही किनारे बैठ॥

ईश्वर को ढूंढने के लिए, उसे प्राप्त करने के लिए हम नाना प्रकार के प्रयत्न करते हैं, पर उसे नहीं पाते, कहते हैं कि वह सर्वत्र है, वह सब जगह है, पर फिर भी हमें क्यों नहीं दीखता ?

उसे प्राप्त करने को धन, वैभव, जीवन तक नष्ट करते हैं, पर पाते नहीं, अन्त में निराश हो कहते हैं कि—ईश्वर नहीं हैं।

भाई ईश्वर है ! पर उसे खोजने में गलती कर रहे हो, हम उसे धन वैभव से नहीं पा सकते, अगर उसे पाना है तो प्रेम करना सीखो प्राणी मात्र से प्रेम करो, जड़ चेतन से प्रेम करो, आत्मा से प्रेम करो।

उसे पाने को जंगल में जाने की, धूनी रमाने की, धन वैभव कष्ट करने की, कोई आवश्यकता नहीं है। जब वह सर्वत्र है तो आपके पास भी होगा, होगा नहीं-है। कहां ? आपके शरीर में।

जिसे आप आत्मा कहते हैं क्या आपने कभी अपनी आत्मा की आवाज पर ध्यान दिया है ? नहीं यही कारण है कि आप उसे ढूंढने पर भी नहीं पाते।

विचार करो ! जब तुम बोलते हो, चलते हो, काम करते हो, सोचते हो या शुभ काम करने की प्रेरणा होती है तो वह कहां से और कौन करता या कहता है ? जब तुम किसी को कष्ट पहुँचाने का विचार कर चलते हो और तुम्हें अन्दर से कोई रोकता है कि ऐसा न करो वह कौन है ? वह अपने अन्दर मौजूद है, उसे अपने अन्दर ही प्राप्त किया जा सकता है।

गृह मन्दिर।

(स्वर्गीय श्री०मनोरमा देवी उपाध्याय की डायरीसे)

जहाँ स्वच्छता है, कूड़ा कचरा न पड़ा हो, छत पर जाले न लगे हों, दरवाजे और खिड़कियां हों, सफाई हो, चीजें सब अच्छी व साफ हों, जहां व्यवस्था हो, जगह के लिये चीज हो, चीज के लिये जगह हो, कहीं कुछ इधर उधर न पड़ा हो, हर वस्तु व्यवस्थित हो उसे कहना चाहिये—'गृह मन्दिर !'

जहां शान्ति हो, स्त्री पुरुष में प्रेम हो, सेवा और संस्कार हो, स्वच्छता और सौन्दर्य व्यापक हो, तथा वातावरण में सर्वत्र स्नेह प्रतीत हो, वही-गृह मन्दिर है।

गृह मन्दिर वही हो सकता है जहां स्त्री जाति को हर प्रकार की छूट हो, जैसे घूमने, फिरने, बोलने, हृदय के भाव प्रगट करने, दिल का दर्द सुनाने, बीमार हो तो आराम करने और गर्भिणी हो तो चिन्ता भार से छूट हो।

हम उसे गृह मन्दिर कह सकते हैं जहां स्त्री का सम्मान हो, स्त्री जाति को जीवन सहचरी के के सब हक हों, जहां बालकों में प्रेम और शिक्षा हो, जहां रूढ़ीवाद न हो, माताओं के लिये मातृत्व का स्थान हो और नारी जाति ईश्वर की शक्ति क्रिया शक्ति के प्रतिनिधि के रूप में समझ कर स्वीकार की गई हो।

गृह मन्दिर में बाल मन्दिर भी समाया हुआ है बालक स्वतन्त्र होना चाहिये यानी उन्हें खेलने कूदने की छूट रहना चाहिये, बालक भूत, प्रेत, हौवा के डर से डरपोक न हों। गृह मन्दिर तो वही है जहां बालकों को ईश्वर का प्रतिनिधि समझ प्रेम किया जाता हो।

गृह मन्दिर प्रेम का विश्वविद्यालय हो और सृष्टि-सौंदर्य का भाग हो।

दीर्घ जीवन का रहस्य ।

कुछ दीर्घ जीवी महानुभावों ने अपने दीर्घ दीवन का रहस्य अपने अनुभव के आधार पर बताये हैं। पाठकों के लाभार्थ उन अनुभवों को नीचे प्रकाशित किया जारहा है इन अनुभवों से लाभ उठाकर अन्य महानुभाव भी उन्हीं की तरह सुन्दर स्वास्थ्य के साथ दीर्घ जीवन प्राप्त कर सकते हैं।

प्रोफेसर कर्वे, उम्र ८१, वर्ष पूना—'खूब भ्रमण करो। नियमित रूप से सुबह-शाम को टहलो। चाय की आदत न डालो।'

रेट बोर्न अमरीका, उम्र ७२ साल—'पैरों से चलने-फिरने के कारण मुझमें जवानी का जोश अब तक कायम है। मैं अब भी प्रति सप्ताह पचास मील से अधिक चलता हूँ। पैदल चलने के कारण ही मैं जिन्दगी का आनन्द लूट रहा हूँ। घूमने से हाजमा सुधरता है, शरीर के विकार नष्ट होते हैं और फेफड़े अच्छी तरह कार्य करने लगते हैं। घूमना सबसे सरल और प्राकृतिक व्यायाम है। चाल में फुर्ती होनी चाहिये। चाय, काफ़ी, शराब और सिगरेट से मुँह मोड़ लीजिये।'

बैंजमिन, उम्र ११४ वर्ष—'कम खाओ, ज्यादा चबाओ, सवारी पर कम बैठो, पैरों से ख़ूब चलो, गाली कम दो, हँसो ज्यादा और ख़ूब सोओ। चिन्ताओं को हँस-हँस कर टाल दो, पेट के साथ ज्यादती न करो। शाकाहारी बनो।'

लुई क्रेमर, ७० वर्ष—गत ५० वर्ष से मैं ख़ूब घूमता रहा हूं। पिछले २३ वर्ष से तो मैं रोज ३०-४० मीलें चला हूं। शराब पीना मैंने बहुत वर्षों से छोड़ दिया है और चाय, काफ़ी तथा तम्बाकू से मुझे नफ़रत है। शाम को दूध, भाजी और फल मेरे लिए पर्याप्त होते हैं। बिना छाने आटे की रोटी मैं लेता हूँ। पेय पदार्थों में पानी, दूध और फलों का रस मुझे प्रिय है। जो जीवन से निराश हो चुके हैं उनको मेरी सलाह है, 'घूमना शुरू करो, पगडंडी पकड़ लो और स्वास्थ्य के उच्चतम शिखर पर चढ़ जाओ।'

डाक्टर मेंचनी कौफ, बलगेरिया—'दही और मट्ठे का प्रयोग बहुत लाभदायक है, क्योंकि ये अँतड़ियों में पहुंचकर उनको शुद्ध करते हैं।'

बलगेरिया में दीर्घ-जीवियों की संख्या अधिक है और उनके जीवन तथा आहार का अध्ययन करके डाक्टर साहब इस परिणाम पर पहुंचे हैं।

विक्टर डेन—'उत्तेजक मनोविकारों से दूर रहो। उनसे उम्र घटती है, चेहरे पर झुर्रियां पड़ जाती हैं और हमारे शरीर में तरह-तरह के विष पैदा हो जाते हैं। घृणा, कामुकता, क्रोध और द्वेष इत्यादि तीव्र मनोविकारों से अपने को बचाओ।'

डाक्टर बरमन मैकफैडन, अमरीका—'अपने दाँतों से अपनी कब्र मत खोदो। अत्यधिक खाने से आदमी कम जीता है।

डाक्टर शाहू, नागपुर—'पिण्डखजूर खाओ। इससे कब्ज दूर होगा। गरम मसाले, मिर्च, चाय, तम्बाकू और शराब से दूर रहो।'

श्री वासुदेवराव गणेश जोशी, पूना—'सुबह चार बजे से ६ बजे तक नित्यप्रति टहलो। जब मन में उदासी का अनुभव हो, अन्न छोड़कर-केवल दूध का सेवन करो।'

लगमाण्णा कोकर्ण, बेलगाँव, उम्र ८० वर्ष—'खेतों की शुद्ध हवा में रहो, दूध पियो और ताजी शाक-भाजी का सेवन करो। भोजन करते समय पानी बिल्कुल न पियो। ठंडे जल से स्नान करो दाँतों को शुद्ध रक्खो, रात को जल्दी सोओ और सुबह जल्दी उठो।'

शेख इस्माइल, नागापट्टम, उम्र २२६ वर्ष—'खूब घूमो, चाय, सिगरेट, बीड़ी, तमाखू आदि से परहेज करो।'

एक ईरानी, उम्र १२६ वर्ष—'खूब घूमिए, खूब दूध पीजिये, खूब खाइये और खूब प्रसन्न रहिये। बेफिक्री और अलमस्ती दीर्घ-जीवन की कुंजी है।'

विश्राम के मानी है शरीर में जंग लगाना। परिश्रम को भार मत समझो। श्रम ही पूजा है।

सरदार फीरोज दस्तूर—'नियमित रूप से आहार करो। प्रातःकाल उठो। सदा प्रसन्न रहो। दुःखों को भी हँसते हुए सहन करो। शराब और तमाखू हानिकारक हैं। खूब घूमो।'

जाहिद पाल, अवस्था ११५ वर्ष—'मैंने अपनी आयु के प्रथम ४० वर्ष केवल खजूर और पानी पर बिताये थे।'

सालाक ममोसा, अवस्था १०५ वर्ष—'मैंने जीवन भर घास के अतिरिक्त और कुछ नहीं खाया है। अपने लिए मैं स्वयं घास उखाड़ता हूं और स्वयं पकाता हूँ। कभी-कभी परिवर्तन के लिए कच्ची घास भी खाता हूँ।'

सर दिनशावाचा, अवस्था ६० वर्ष—'मैं ५ बजे सबेरे उठता हूं और रात को नियमित समय पर सो जाता हूं। 'अति सर्वत्र वर्जयेत' का अनुयायी हूं। मेरे घूमने ने मेरे स्वास्थ्य को स्थाई बनाने में बड़ी सहायता पहुंचायी है। मैं खेलना भी पसन्द करता हूं।'

मिसेज केथराइन प्रकेट अवस्था ११२ वर्ष—'मैं अपनी रहन सहन में सदा से सादी रखती चली आ रही हूं और कामों में काफी दिलचस्पी लेने की मेरी आदत है।'

सर तेमुल जी, अवस्था ८७ वर्ष—'मैं खान-पान में सदा से संयमी रहा हूं। मैं जानता हूँ कि मुझे कितना खाना चाहिए, क्या खाना चाहिए, कब खाना और कैसे खाना चाहिए। मैं नियमित रूप व्यायाम करता हूं। इस उम्र में भी मैं खूब घूमता और डंड-बैठक लगाता हूं। ७५ वर्ष की उम्र तक [illegible] की एक बूँद की भी मुझे आवश्यकता नहीं मालूम हुई। मैं सबेरे उठ जाता हूं। हमें यह न भूल जाना चाहिए कि शरीर के साथ अन्याय करने से उसका पाप हमें भुगतना पड़ेगा। देर से या जल्दी ही।'

सर नसरवान जी, अवस्था ७३ वर्ष—मैं तड़के उठता हूं और तभी से अथक परिश्रम आरम्भ कर देता हूं। शारीरिक व्यायाम मनुष्य को युवा बनाये रखने में बड़ी सहायता पहुँचाते हैं। मैंने जवानी में जो व्यायाम किये, उसका मजा इस बुढ़ापे में लूट रहा हूं। व्यायाम अनेक रोगों की अव्यर्थ औषधि है, किन्तु जिस समय मन और शरीर दोनों थक जाते हैं उस समय व्यायाम कदापि न करना चाहिए। नियमित रहने की आदत अच्छी है।'

मिसेज पीटर ड्रमंड, अवस्था १०० वर्ष—'मेरा जन्म अच्छे वंश में हुआ है। मैंने अपने शरीर को सदैव काम में लगाये रक्खा है। जीवन में जो अच्छी वस्तुएं हैं मैंने उन सबका उपयोग किया है। मद्यपान से मैं घृणा करती हूं।'

सर होमी मेहता—दीर्घजीवी होना मेरे हाथ की बात है। खूब खेलना और मस्त रहना स्वास्थ्य-वर्धक है। मैं कहीं भी होऊँ ५॥ बजे सुबह जरूर उठ जाता हूं। मैं काम करने में सुख अनुभव करता हूं और पेंशन लेने की कल्पना भी नहीं करता। मैं कभी खतरनाक बीमारी का शिकार नहीं हुआ। मुझे दवाओं पर तनिक विश्वास नहीं है। जब कभी मुझे शरीर में कुछ खराबी मालूम होती है, मैं भोजन त्याग देता हूं और उपवास करने लगता हूं। उपवास में जल खूब पीता हूं रात में अधिक जागना हानिकारक है। खुली हवा में अधिक रहो। दिल को हँसी-खुशी से उछालते रहो, मनहूसीयत से सदा दूर रहो। अधिक भोजन करने से उम्र घटती है।'

इस्तम्बोल का जारो आगा, अवस्था १६० वर्ष—'मेरी दीर्घायु का रहस्य मेरा संयमी जीवन है मैंने केवल शाक-भाजी और फल खाकर इतनी लम्बी उम्र पाई है।'

जार्ज बर्नार्डशा, अवस्था ८६ वर्ष—धूम्र-पान या मद्यपान न करने के कारण ही मुझमें एक युवक जैसा रक्त चाप है। मैं कट्टर शाकाहारी हूं और डाक्टरों से सदा बचता रहता हूँ।'

मिसेज एक स्टन्सन, अवस्था ११२ वर्ष—'मेरे दीर्घजीवन का रहस्य है-काम करना और संतुष्ट रहना।'

—'जीवन सखा'

———

थके हुए विहंग से

[लेखक—कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर अनुवादक—साहित्य-रत्न श्री० सुधीन्द्र बी० ए०]

[१]

यदि संध्या बढ़ती आती है गति मन्द-मन्द मन्थर चलकर।
संगीत रुक गया है दिन का उसके इस नीरव इंगित पर॥
साथी-संगी भी नहीं एक सूना-सा है अनन्त अम्बर।
यदि अंग-अंग में भी तेरे आई है गहरी क्लांति उतर॥
जाग्रत है अन्तर में तेरे यदि निस्वर आशंका महान।
सोये हैं सारे दिग् दिगन्त अपने अवगुण्ठन श्याम तान॥
मेरे विहंग, अंधे विहंग, पर पंख अभी तू बन्द न कर!

[२]

अब भी तेरे आगे विहंग! है रात बड़ी लम्बी-दूभर।
सम्मुख सुदूर अस्ताचल पर है अब भी ऊंघ रहा दिनकर॥
संसार सकल निश्वास रोक एकान्त स्तब्ध-आसन ऊपर॥
रजनी के ये धीमे-धीमे है एक-एक गिन रहा पहर॥
तिर अंधकार सागर अकूल, कढ़ अभी-अभी ही लिए बांक
पश्चिम-दिशान्त पर वह सुदूर है क्षीण चन्द्रमा रहा झांक
मेरे विहंग, अंधे विहंग, पर पंख अभी तू बन्द न घर

[३]

तारागण अम्बर में ऊपर अँगुलियों से इङ्गित कर कर।
तेरी ही ओर निहार रहे अपनी अनिमेष दृष्टि रख कर॥
नीचे अधीर गंभीर मरण शत-शत लहरों से लहर-लहर।
तेरी ही ओर दौड़ता है उद्वेलित, उछल उछल [illegible]कर॥
वे किन्तु न जाने कौन वहाँ हैं खड़े हुए बहु दूर, पार।
कर जोड़ करुण अनुनय करके 'आओ-आओ!' करते पुकार!
मेरे विहंग, अंधे विहंग, पर पंख अभी तू बन्द न कर!

[४]

भय नहीं, भीति भी नहीं अरे, रे स्नेह-मोह का पाश किधर?
आशा न यहाँ, आशा केवल छल है जग में-झूठा-[illegible]
मुँह में न अरे वाणी कोई बैठा वृथा न [illegible]
टिक रहने को घर-बार नहीं फूलों की सेज नहीं [illegible]
हैं पंख, पंख बस विद्यमान, फैला आंगन-सा [illegible]
है निविड़ भयावह अन्धकार, है कहीं न ऊषा-[illegible]
मेरे विहंग, अन्धे विहंग, पर पंख अभी तू ब[illegible]